आई.एस.एस.एन. संख्या : 2454–2458
नवरचना NAVRACHNA
वर्ष 1, अंक 1, जून 2015, पृ. 66–67

पुस्तक समीक्षा

सिहं, रामगोपालः वैश्वीकरण, मीडिया और समाज, जयपुरः नेशलन पब्लिशिंग हाउस, 2011, पृ. स.– 260. xii. मूल्य– 475 रुपये

वैश्वीकरण की व्यापक प्रक्रिया ने पिछले दो दशकों में समाज के सभी पक्षों को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संचार तकनीकियों में हुए नवाचारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैश्वीकरण के साथ–साथ मीडिया के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित हुए हैं जिन्हें आज संचार क्रान्ति की संज्ञा दी गयी है। कुछ समाज वैज्ञानिकों की मान्यता है कि वर्तमान में संचार तकनीकी के क्षेत्र में हुए इन परिवर्तनों की तुलना 15वीं–16वीं शताब्दी में हो रहे तकनीकी परिवर्तनों से की जा सकती है। इस प्रकार वैश्वीकरण मीडिया तथा समाज में एक गतिमान सम्बन्ध स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस महत्वपूर्ण विषय ने समाज वैज्ञानिकों का ध्यान भी आकर्षित किया है। डॉ॰ राम गोपाल सिंह द्वारा अपनी पुस्तक वैश्वीकरण, मीडिया और समाज में वैश्वीकरण, मीडिया और समाज के बीच अन्तःक्रिया, अन्तःसबंध व अन्तःप्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया है साथ ही समकालीन समाज में आतंकवाद व नक्सलवाद जैसी विघटनकारी एवं चुनौतीपूर्ण समस्याओं की वैश्वीकरण के संदर्भ में व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक में कुल ग्यारह लेख है।

प्रथम लेख ''वैश्वीकरण, मीडिया और समाज'' में वैश्वीकरण, मीडिया, और समाज की अवधारणाओं की व्याख्या करने के साथ–साथ उनके अर्न्तसंबंधों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय लेख, ''वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव'' के अर्न्तगत लेखक ने वैश्वीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओं को भी रेखांकित किया है। तत्पश्चात् वैश्वीकरण के भारतीय समाज पर सामान्य रूप से पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन करने के साथ–साथ समाज के कमजोर वर्गो किसानों, श्रमिकों, महिलाओं के साथ–साथ दलित वर्गो पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया है। तीसरे लेख, ''वैश्वीकरणः दलित एवं कमजोर वर्गों के मानव अधिकार एवं गरिमा का प्रत्यावर्तन'' में लेखक ने मानव अधिकार की अवधारणा की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करते हुए मानव अधिकार एवं मौलिक अधिकार में भेद स्पष्ट किया है, साथ ही समाज के कमजोर वर्गों – विशेषतः दलित एवं महिलाओं के मूल अधिकारों एवं मानव अधिकारों की प्राप्ति की आवश्यकता पर बल दिया है। परन्तु इस लेख में इसका सम्बन्ध वैश्वीकरण से स्थापित करने का कोई स्पष्ट प्रयास नही दिखायी देता है। चौथा लेख, ''वैश्वीकरण एवं आरक्षण व्यवस्था'' भारत में आरक्षण व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, आरक्षण के स्वरूप एवं प्रकारों की विवेचना प्रस्तुत करने के साथ–साथ परिवर्तित राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिदष्श्य में आरक्षण से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर गहन विमर्श प्रस्तुत करता है।

पांचवां लेख, ''वैश्वीकरणः वैकल्पिक सामाजिक–सांस्कषतिक प्रारूप की पहल'' एक लघु लेख है, जिसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतन्त्र की स्थापना, प्रौद्योगिक विकास के साथ–साथ शिक्षा, विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति व आर्थिक विकास की ऊंची दर प्राप्त करने के बाद भी हम आज भी अपने विकष्त सामाजिक सांस्कषतिक प्रारूप का विकल्प नहीं तलाश सके है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण क्या इसका विकल्प प्रस्तुत कर पायेंगें? इस लेख में इस मुद्दे को रेखांकित करने का प्रयास लेखक ने किया है। छठे लेख ''जातीय अतिवाद से

जातीय समन्वयः मीडिया का सामाजिक निहितार्थ'' में लेखक ने जातीय अतिवाद से फैले विष का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए वैकल्पिक अवधारण ''जातीय समन्वयवाद'' के अन्तर्गत जातिविहीन समाज की संरचना संबंधी महावीर, बुद्व, नानक, कबीर, विवेकानंद और अंबेडकर के संदेशों को मीडिया के माध्यम से प्रसारित एवं प्रचारित करने की आवश्यकता पर बल दिया है। सातवां लेख, ''बदलता राजनीतिक परिवेश और मीडिया'' भी एक लघु लेख है जिसमें भारत में पिछले दशकों में वैश्वीकरण तथा सूचना क्रान्ति के फलस्वरूप राजनीतिक परिदृश्य पर पड़ रहे प्रभावों का आकलन करने के साथ–साथ इस बदलते राजनीतिक परिवेश में मीडिया की भूमिका का भी विवेचन किया गया है।

पुस्तक का आठवां लेख ''नक्सलवादी आन्दोलनः एक समाज वैज्ञानिक विवेचन'' नक्सलवाद के उद्भव, विकास, इसके वैचारकीय आधार, संरचनात्मक स्वरूप, कार्य–प्रणाली, इसकी उत्पति व निरन्तरता के कारणों का सारगर्भित विवेचन करते हुए नक्सलवाद के भविष्य सम्बन्धी आकलनों की समीक्षा प्रस्तुत करता है। पुस्तक का नवां लेख, ''स्वतंत्रोत्तर भारत में आतंकवाद'', में लेखक ने आतंकवाद क्या है?, भारत में आतंकवाद की पष्ठभूमि, आतंकवाद के कारण, आतंकवाद पर नियन्त्रण करने में आने वाली कठिनाइयों, तथा जिहादी आतंकवाद के भविष्य पर अपने विश्लेषण को बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। पुस्तक के अन्तिम दो लेखों ''वैश्वीकरण, बाजारवाद एवं लोकतन्त्र'' तथा ''वैश्वीकरण एवं शिक्षा व्यवस्था'' में जहां पहला लेख प्रमुख रूप से वैश्वीकरण के बाजारवादी चरित्र को उजागर करते हुए इसके द्वारा लोकतन्त्र को एक साधन के रूप में उपयोग करने की इसकी विशेषता को रेखांकित करने का प्रयास करता है, वहीं दूसरा लेख वैश्वीकरण के फलस्वरूप शिक्षा व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों की पड़ताल करता प्रतीत होता है।

यह पुस्तक अति सहज एवं सरल भाषा में वैश्वीकरण के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों का सारगार्भित विवेचन करने के साथ–साथ मीडिया से इसके सहसम्बन्धों पर भी सटीक टिप्पणी करती है। लेखक ने दो लेखों में नक्सलवाद तथा आतंकवाद की समस्या का विवेचना बड़े ही सारगर्भित तरीके से किया है। यह पुस्तक न केवल उन लोगों के लिए उपयोगी है जो वैश्वीकरण तथा मीड़िया के समाज वैज्ञानिक अध्ययन में रूचि रखते है, अपितु सामान्य रुचि के पाठक के समक्ष वैश्वीकरण जैसे गूढ़ विषय को सुबोध एवं सुगम भाषा शैली में सहजता से प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि लेखक ने वैश्वीकरण के सन्दर्भ में उठने वाले सैद्धान्तिक एवं पद्धति शास्त्रीय मुद्दों पर कुछ कम ध्यान दिया है। परन्तु इस कारण पुस्तक की उपयोगिता में कोई कमी नही आती है। मेरी राय में इस विषय पर यह एक पठनीय पुस्तक है।

वीरेन्द्र पाल सिंह,
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
वैश्वीकरण एवं विकास अध्ययन केन्द्र,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय